



Neutral Citation No. -2026:AHC-LKO:21071

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ

आपराधिक अपील सं. - 1671/2007

चैतू उर्फ कुबेर

.....अपीलकर्ता (गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिवादी (गण)

अपीलकर्ता (गण) के अधिवक्ता	:	अब्दुल रफी सिद्दीकी, रेहान अहमद सिद्दीकी
प्रतिवादी (गण) के अधिवक्ता	:	शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय सं. - 28

माननीय न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374 (2) के अंतर्गत यह वर्तमान अपील, अपर सत्र न्यायाधीश (एफ.टी.सी.-3) फैजाबाद द्वारा सत्र विचारण संख्या 203/1996 राज्य बनाम चैतू उर्फ कुबेर और अन्य में दिनांक 12.07.2007 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध दाखिल की गई है। यह मामला, पुलिस थाना मालीपुर, जिला अंबेडकर नगर के वाद अपराध सं. 221/1993 भारतीय दण्ड संहिता की धारा 379/511 के अंतर्गत उत्पन्न हुआ है, जिसमें अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 379 सपठित धारा 511 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और उसे एक वर्ष के कठोर कारावास तथा 1,000/- रुपये के जुर्माने का दण्डादेश सुनाया गया है जिसमें जुर्माना अदा न करने की स्थिति के लिए भी शर्तें शामिल हैं।

3. अभियोजन पक्ष का वाद यह है कि दिनांक 20/21.12.1993 की रात को, लगभग 12:00 बजे आधी रात के समय, पाँच चोर एक ट्रांसफॉर्मर चुराने के इरादे से एक सरकारी ट्यूबवेल पर पहुँचे। गाँव वाले, जो पहले हुई एक चोरी के कारण उस इलाके में गश्त कर रहे थे, उन्होंने शोर मचाया ("चोर-चोर") और मौके पर ही दो लोगों को पकड़ने में कामयाब रहे त्रिलोकी नाथ पांडे (जिनकी बाद में चोटों के कारण मृत्यु हो गई) और अपीलकर्ता, चैतू उर्फ कुबेर। पूछताछ करने पर यह पता चला कि उनके साथी, जिनमें राकेश और राम चंद्र शामिल थे, मौके से फरार हो गए थे।

4. शिकायतकर्ता कृष्ण मुरारी द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) के आधार पर, पुलिस थाना मालीपुर, जिला अंबेडकर नगर में इस मामले को अपराध संख्या 221/1993 के रूप में, भारतीय दंड संहिता की धारा 379/511 के अंतर्गत पंजीकृत किया गया।

5. जाँच अधिकारी ने जाँच के दौरान घटनास्थल का दौरा किया, घटनास्थल का नक्शा नजरी तैयार किया, साक्षियों के बयान दर्ज किए, और दो साइकिलों सहित अपराध से संबंधित वस्तुएं बरामद की। जाँच पूरी होने के बाद, अभियुक्त व्यक्तियों चैतू उर्फ कुबेर, राकेश और राम चंद्र के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 379/511 के अंतर्गत आरोप-पत्र दाखिल किया गया।

6. इसके बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट के न्यायालय में आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने के बाद, उक्त वाद सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया, जहाँ इसे सत्र परीक्षण सं. 203/1996 के रूप में पंजीकृत किया गया। विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 379/511 के अंतर्गत आरोप निर्धारित किए, जिस पर उन्होंने खुद को निर्दोष बताया और विचारण की मांग की।

7. अपने वाद को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने सात साक्षियों की जाँच की: अभियोजन साक्षी-1 कृष्ण मुरारी (शिकायतकर्ता), अभियोजन साक्षी-2 बैजनाथ, अभियोजन साक्षी-3 राम जियावन, अभियोजन साक्षी-4 सुरेश चंद्र, अभियोजन साक्षी-5 रमेश चंद्र मिश्रा, अभियोजन साक्षी-6 राम अनुज, और अभियोजन साक्षी-7 उप-निरीक्षक सीता राम।

8. अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने का कार्य पूरा हो जाने के बाद, विचारण न्यायालय द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्तों के बयान दर्ज किए गए, इन बयानों में उन्हें समस्त साक्ष्य तथा उनके विरुद्ध उपलब्ध सभी दोषारोपक परिस्थितियों के बारे में स्पष्टीकरण दिया गया। इसके प्रत्युत्तर में, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने अभियोजन पक्ष की कहानी तथा अपने विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य का सिरे से खंडन कर दिया। उन्होंने विशेष रूप से यह कथन किया कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

9. इसके बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने और मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के बाद, अपीलकर्ता चैतू उर्फ कुबेर को दोषी पाया और उसे दण्डादेश सुनाया अभियुक्त जबकि सह-अभियुक्त राकेश और राम चंद्र को घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति के संबंध में साक्ष्यों के अभाव के कारण बरी कर दिया।

10. विवादित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर, अभियुक्त-अपीलकर्ता चैतू उर्फ कुबेर ने इस न्यायालय के समक्ष यह अपील प्रस्तुत की है।

11. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि उन्होंने दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की है, तथापि इस स्तर पर, वे केवल दंडादेश के संबंध में ही अपील पर ज़ोर देना चाहते हैं और अपील के गुण-दोष के आधार पर उस पर ज़ोर नहीं देना चाहते।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि उत्तर प्रदेश राज्य की अपनी स्थानीय परिवीक्षा विधि है, अर्थात् उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938। उन्होंने आगे यह भी निवेदन किया कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (केंद्रीय अधिनियम) (जिसे इसके बाद 1958 का अधिनियम कहा जाएगा) भी उत्तर प्रदेश राज्य में लागू होता है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) 2 एस.सी.सी 198** के वाद में निर्णय दिया था। अतः, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि इन दोनों में से किसी भी अधिनियम के अंतर्गत लाभ प्रदान करना न्यायालय के विवेक पर निर्भर है।

13. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि यह घटना 32 वर्ष पहले हुई थी और अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई और आपराधिक इतिहास नहीं है। वर्तमान में अपीलकर्ता की उम्र लगभग 65 वर्ष है और उसे प्रथम अपराधी होने का लाभ दिया जा सकता है, तथा अपीलकर्ता को 1958 के अधिनियम का लाभ प्रदान किया जा सकता है। उन्होंने आगे यह भी कहा कि अपीलकर्ता प्रथम बार अपराध करने वाला व्यक्ति है और उसे पहले किसी भी मामले में दोषी नहीं ठहराया गया है। उन्होंने आगे यह भी कहा कि यह न्यायालय ही है

जो अभियुक्त-अपीलकर्ता को 1958 के अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत मिलने वाले लाभ पर विचार कर सकता है।

14. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध किया और यह प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय द्वारा कोई भी महत्वपूर्ण अनियमितता या अविधिक कार्य नहीं किया गया है, और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों को देखते हुए, अभियुक्त-अपीलकर्ता को सही ढंग से दोषी ठहराया गया है।

15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता आगे कहते हैं कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को कुछ शर्तों के आधार पर दिया जा सकता है, जैसा कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 में बताया गया है।

16. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों पर विचार करने से पहले, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 3 और 4 को उद्धृत करना उपयोगी होगा:

“3. कुछ अपराधियों को चेतावनी देकर रिहा करने की न्यायालय की शक्ति:-

“जहाँ कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अंतर्गत दंडनीय अपराध करने का दोषी पाया जाता है, या भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अंतर्गत, दो वर्ष से अधिक के कारावास, या जुर्माने, या दोनों से दंडनीय किसी अपराध का

दोषी पाया जाता है, और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं होती है, और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उसकी यह राय है कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है को ध्यान में रखते हुए ऐसा करना उचित है, तो, उस समय लागू किसी अन्य विधि में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे कोई दंड देने या धारा 4 के अंतर्गत सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने के बजाय, उचित चेतावनी देकर रिहा कर सकता है।”

स्पष्टीकरण—इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि में, इस धारा या धारा 4 के अधीन उसके विरुद्ध किया गया कोई भी पूर्व आदेश शामिल होगा।

4. कुछ अपराधियों को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने की न्यायालय की शक्ति

-

(1) जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जिसके लिए मृत्युदंड या आजीवन कारावास का दंड नहीं है, और जिस न्यायालय ने उसे दोषी पाया है, उसकी यह राय है कि वाद की परिस्थितियों को, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है, ध्यान में रखते हुए, उसे सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ना उचित है, तो, उस समय लागू किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते

हुए भी, न्यायालय उसे तत्काल कोई दंड देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे एक बंधपत्र निष्पादित करने पर, जमानतदार के साथ या बिना जमानतदार के, छोड़ दिया जाए; यह बंधपत्र इस शर्त पर होगा कि वह न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि के दौरान, जो तीन वर्ष से अधिक नहीं होगी, बुलाए जाने पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा और अपना दंड ग्रहण करेगा, तथा इस बीच शांति बनाए रखेगा और उसका आचरण अच्छा रहेगा:

बशर्ते कि न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा, जब तक कि उसे इस बात का संतोष न हो जाए कि उस अपराधी या, उसका कोई जमानदार यदि कोई हो, उस स्थान पर स्थायी निवास स्थान या नियमित व्यवसाय उस क्षेत्र में है, जिस पर न्यायालय का क्षेत्राधिकार है, अथवा उस स्थान पर है जहाँ अपराधी उस अवधि के दौरान रहने की संभावना रखता है, जिसके लिए वह बंधपत्र निष्पादित करता है।

17. 1958 के अधिनियम की धारा 4 वहाँ लागू होती है, जहाँ कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए दण्ड न तो आजीवन कारावास है और न ही मृत्युदंड। न्यायालय, ऐसे अभियुक्त को, इस धारा में उल्लिखित एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर, सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर सकता है। इस धारा के प्रावधानों को लागू करते समय, न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से पूर्व, वाद की परिस्थितियों, अपराधी के चरित्र और अपराध की प्रकृति पर भी विचार करना आवश्यक है।

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

18. जहाँ तक अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 1958 के अधिनियम की धारा 4 के लाभ प्रदान किए जाने के अनुरोध का प्रश्न है, वहाँ उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिक स्थिति और विधि पर चर्चा करना अनिवार्य है।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय ने रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444 के वाद में, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के उद्देश्य और प्रयोजन पर चर्चा करते हुए, अनुच्छेद संख्या 4 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

“4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसका सुधार करना अधिक है। व्यापक रूप से कहें तो, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के मध्य, तथा मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी अपराधियों और कम गंभीर अपराध के दोषी अपराधियों के मध्य अंतर करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, न्यायालय को यह पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए, उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के वाद में न्यायालय को यह निषेधाज्ञा जारी की जाती है कि वह

उन्हें कारावास का दंड तब तक न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र भी शामिल है को देखते हुए, उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना उचित नहीं है।”

20. इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय ने वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य (1981) 1 एस.सी.सी. 447 : एआईआर 1981 एस.सी 643 के वाद में, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा सपठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के अनुपालन के संबंध में बेंच और बार के कर्तव्य पर चर्चा करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की:-

“जिस अपराध के लिए दोषसिद्धि गई है, वह ऐसा है जिस पर धारा 360, या कम से कम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 लागू होता है। हमारे समक्ष उपलब्ध सामग्री अपूर्ण है, क्योंकि विचारण न्यायालय ने दण्डादेश सुनाने के अपने कर्तव्य को निभाने में असावधानी बरती है। हम इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि किसी अभियुक्त को दण्डादेश सुनाना एक संवेदनशील और विवेकपूर्ण कार्य है, न कि केवल अनुमान के आधार पर किया जाने वाला कोई सामान्य या यांत्रिक काम। विचारण न्यायालय को ऐसी सामग्री एकत्र करनी चाहिए थी जो उस समय की परिस्थितियों के अनुसार उचित दण्डादेश देने में सहायक सिद्ध होती। अपराधकर्ता की सामाजिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत कारक बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, यद्यपि व्यवहार में आपराधिक न्यायालय अपराधी के सामाजिक परिवेश या व्यक्तिगत परिस्थितियों पर शायद ही कभी ध्यान देती हैं। भले ही दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा

360 लागू न हो, फिर भी दण्डादेश सुनाने वाले न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह इतनी सक्रियता दिखाए कि ऐसे तथ्य एकत्र कर सके जिनका दण्डादेश पर असर पड़ता हो और जिनका उद्देश्य अपराधी का पुनर्वास करना हो। सर्वमान्य वाद में ऐसी सामग्री के अभाव के कारण हमें अधिवक्ताओं से भी बहुत कम सहायता मिल पाई है। सच तो यह है कि अधिवक्ता भी उन विधिक प्रावधानों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते, जिनका उद्देश्य अपराधी के साथ इस तरह से पेश आना है कि वह अपराध करना छोड़ दे। हम इस बात पर इसलिए ज़ोर दे रहे हैं, क्योंकि दण्ड में सुधार से संबंधित अधिनियमों को छोटे अधिनियम मान लिया गया है, और इसलिए उन्हें ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता। यह एक पूरी तरह से गलत सोच है; और भले ही अधिवक्ता सहायता न करें, फिर भी न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराधी परीक्षा अधिनियम जैसे अधिनियमों में निहित, दण्डादेश सुनाने के मानवीय उद्देश्य को पूरा करे।”

21. यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस माननीय न्यायालय ने सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 लॉ सूट (ऑल) 1343 के वाद में, ज़ोर देकर यह बात कही है कि उचित मामलों में अभियुक्तों पर परीक्षा विधि को लागू किया जाना चाहिए और उन्हें इस लाभकारी अधिनियम का लाभ दिया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:—

“ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लाभकारी अधिनियम को भुला कर दिया गया है

और यहाँ तक कि न्यायाधीशों ने भी विधि के इस प्रावधान को लगभग भुला ही

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

दिया है। इसलिए, वाद को खत्म करने से पहले, इस न्यायालय को लगता है कि यदि विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय के लिए सावधानी का एक शब्द नहीं लिखा गया, तो मैं अपने कर्तव्यों को निभाने में विफल रहूँगा। इस न्यायालय के महानिबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की एक प्रति उत्तर प्रदेश के सभी ज़िला न्यायाधीशों को भेजें, जो बदले में यह सुनिश्चित करेंगे कि इस आदेश की प्रति उनके अधीन कार्य करने वाले सभी न्यायिक अधिकारियों के मध्य वितरित की जाए और इस निर्णय का कठोरता से पालन सुनिश्चित किया जाए। राज्य के ज़िला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे हर मह उन सभी न्यायालय से रिपोर्ट मंगाएँ अर्थात् विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय जो ऐसे मामलों को देखते हैं और यह बताएँ कि कितने वादों में अभियुक्त को उपर्युक्त गए प्रावधानों का लाभ दिया गया है। ज़िला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे प्रत्येक मह होने वाली बैठक में ऐसे वादों की व्यक्तिगत रूप से निगरानी करें। संबंधित ज़िला न्यायाधीश महानिबंधक को हर मह एक विवरण भेजेंगे जिसमें यह बताया जाएगा कि विचारण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय ने कितने वादों में अभियुक्त को उपर्युक्त गए लाभकारी अधिनियम का लाभ दिया है। इस आदेश की एक प्रति तत्काल पालन के लिए महानिबंधक के समक्ष रखी जाए।”

22. इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद (2004) 7 एससीसी 659** के वाद में अपीलकर्ताओं को

अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ प्रदान किया है, और निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

“अभियुक्त की ओर से उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि यह दुर्घटना वर्ष 1990 की है। दोनों पक्ष शिक्षित हैं और पड़ोसी भी हैं। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई यह प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। यह दुर्घटना दस वर्ष से भी अधिक पुरानी है। यह विवाद पड़ोसियों के बीच नाली के अधिकार को लेकर एक तुच्छ से विवादक पर आधारित था। यह दुर्घटना क्रोध के आवेश में हुई थी। सभी पक्ष शिक्षित हैं और आपस में दूर के रिश्तेदार भी हैं। यह दुर्घटना ऐसी नहीं है जिसके लिए अभियुक्त को कारावास की सज़ा भुगतने का निर्देश दिया जाए। हमारी राय में, यह एक ऐसा उपयुक्त वाद है जिसमें अभियुक्त को परिवीक्षा पर रिहा कर दिया जाना चाहिए, और उन्हें सदाचरण के लिए एक वर्ष का बंधपत्र भरने का निर्देश दिया जाना चाहिए।”

23. अब, सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर 2005 एससी 3534 के वाद में अभियुक्तों/अपीलकर्ताओं को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के बिंदु पर आते हुए, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:-

“विवेकपूर्ण शक्ति का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता और पीड़ित पर

उस अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को मिलने वाला लाभ, अधिनियम के प्रावधानों में निहित सीमाओं के अधीन है; और "सकता है" शब्द स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि यह विवेक न्यायालय के पास है कि वह अपराध की प्रकृति, अपराधी के चरित्र और वाद की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपराधी को रिहा करे या नहीं। अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्तियाँ न्यायालय के पास तब आती हैं, जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए मृत्युदंड या आजीवन कारावास का दण्ड नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को दोषी ठहराते समय किया जा सकता है, और यदि न्यायालय को लगता है कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है को देखते हुए अभियुक्त को यह लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण स्तर पर भी कर सकता है, और साथ ही यह न्यायालय भी, भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील की सुनवाई करते समय, इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है।"

24. यह भी उल्लेखनीय है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने, मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य एआईआर 2017 एससी पृष्ठ 660 के वाद में, निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"20-.....रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444 के वाद में, न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह राय दी:-
"यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसमें सुधार लाना अधिक है। व्यापक रूप से कहें तो, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के मध्य, तथा मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी अपराधियों और कम गंभीर अपराध के दोषी अपराधियों के मध्य अंतर करता है। जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, न्यायालय को यह पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन, उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में, न्यायालय को यह निर्देश दिया गया है कि वह उन्हें कारावास का दण्डादेश न सुनाए, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र भी शामिल है को देखते हुए, उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना उचित नहीं है।"

25. माननीय उच्चतम न्यायालय ने जगत पाल सिंह व अन्य बनाम हरियाणा राज्य एआईआर 2000 एससी 3622) के वाद में, अभियुक्तों की भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323, 452 और 506 के अंतर्गत दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए भी, उन्हें परीक्षा का लाभ प्रदान किया है, और अभियुक्तों को इस शर्त पर रिहा किया है कि वे मजिस्ट्रेट के समक्ष एक बंधपत्र निष्पादित करेंगे, जिसमें वे अगले छह माह की अवधि तक अपना आचरण अच्छा रखने और शांति बनाए रखने का वचन देंगे।

26. यह उल्लेखनीय है कि कथित घटना बहुत पहले, वर्ष 1993 में हुई थी। अभियुक्त-अपीलकर्ता पिछले 32 वर्षों से इस मामले में कष्ट भोग रहा है, उसके विरुद्ध कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, और वर्तमान में अपीलकर्ता की आयु लगभग 65 वर्ष है।

27. वाद के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मेरा यह मत है कि अभियुक्त/अपीलकर्ता को 1958 के अधिनियम के प्रावधानों का लाभ प्रदान किया जाना चाहिए।

28. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, जहाँ तक अपीलकर्ता **चैतू उर्फ कुबेर** की दोषसिद्धि का संबंध है, उसे बरकरार रखा जाता है, लेकिन दण्डादेश में **संशोधन** किया जाता है। अपीलकर्ता को जेल भेजने के बजाय, उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया जाता है, और उसे निर्देश दिया जाता है कि वह संबंधित ज़िला परिवीक्षा अधिकारी के समक्ष अपने व्यक्तिगत बंधपत्रों के साथ-साथ 20,000/- रुपये के दो प्रतिभूति बंधपत्र भी प्रस्तुत करे, साथ ही, वह इस आशय का एक वचनपत्र भी दे कि वह आज से एक वर्ष की अवधि के दौरान शांति और अच्छा व्यवहार बनाए रखेगा। ये बंधपत्र अपीलकर्ता **चैतू उर्फ कुबेर** द्वारा इस निर्णय की तिथि से एक महीने की अवधि के भीतर प्रस्तुत किए जाने हैं।

29. उपरोक्त शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन होने की स्थिति में, अपीलकर्ता **चैतू उर्फ कुबेर** को हिरासत में ले लिया जाएगा और उसे दिया गया दण्डादेश भुगतना होगा।

30. उपरोक्त संशोधन के साथ, यह आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

31. इस आदेश की एक प्रमाणित प्रति संबंधित न्यायालय को अनुपालन हेतु भी भेजी जाए।



32. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आवश्यक अनुपालन हेतु इस आदेश की सूचना संबंधित न्यायालय को दे।

33. विचारण न्यायालय का अभिलेख, यदि कोई हो, तो उसे भी संबंधित जिला न्यायालय को वापस भेज दिया जाए।

(न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव)

17 मार्च, 2026

अरविन्द

Translated Version. Not for Legal Use.